जैन परम्परा का सांस्कृतिक मूल्यांकन

डॉ० मोरेश्वर पराडकर

भारतीय संस्कृति के इतिहास में जैन धर्म तथा उसके अनुयायियों ने ठोस कार्य किया, इसमें कोई संदेह नहीं है। भारतीय संस्कृति का इतिहास इस बात का साक्षी है कि वैदिक काल के अन्तिम अंश में उपनिषदों की शिक्षा के कारण भारत में प्रबल वैचारिक परिवर्तन हुआ। इसके फलस्वरूप कर्मकाण्ड निःसार प्रतीत हुआ, वेदों के प्रामाण्य पर आघात हुआ और ईसा के पूर्व आठवीं शताब्दी में ही प्रचलित जीवन के विषय में लोगों में असन्तोष की लहर पैदा हुई। इसी काल में वैदिक कर्मकाण्ड का विरोध करने वाले श्रमण-संप्रदायों का जन्म हुआ जिनमें नन्दवच्छ द्वारा प्रवर्तित आजीविक-पंथ, मक्खलि गोसाल द्वारा पुरस्कृत अक्रियावादी पंथ, अजित केशकम्बली द्वारा प्रस्थापित विशुद्ध भोगवादी संप्रदाय, पकुध कात्यायन प्रणीत शाश्वतवाद तथा संजय वेलट्ठिपुत्त द्वारा पुरस्कृत अज्ञेयवाद का प्रधान रूप से समावेश है। इनके अतिरिक्त कई प्रकारों के तपस्वी, परिव्राजक, जटाधारी, त्रैकाण्डिक, उच्छवृत्ति को अपनाने वाले, औतिक तथा प्रागण्डिक अपनी-अपनी पद्धति के अनुसार देहदण्ड पर जोर देकर जनता के मन पर प्रभाव डाल रहे थे। वैचारिक मन्थन की इस पार्श्व-भूमि पर वर्धमान महावीर तथा तथागत द्वारा प्रणीत कर्म एवं दर्शन का सही मूल्यांकन करना समीचीन होगा।

जैनों की परम्परा के अनुसार जैन धर्म अत्यन्त प्राचीन है। जैन धर्मानुयायियों का कथन है कि वैदिक साहित्य में भी जैन तीर्थङ्करों के नाम पाए जाते हैं। युग-युग में जैन धर्म के जो प्रणेता हुए उन्हीं को 'तीर्थङ्कर' की संज्ञा प्राप्त है और जैन परम्परा के अनुसार वर्धमान महावीर तक जो चौबीस तीर्थङ्कर हुए उनके नाम हैं—ऋषभदेव, अजित, संभव, अभिनन्दन, सुमती, पद्मप्रभ, सुपार्श्व, चन्द्रप्रभ, सुविधि (पुष्पदन्त), शीतल, श्रेयांस, वासुपूज्य, विमल, अनंत, धर्म, शान्ति, कुंथु, अर, मल्ली, मुनिसुव्रत, नमी, अरिष्टनेमी, पार्श्व तथा वर्धमान (महावीर)। प्रथम तीर्थङ्कर ऋषभदेव के पुत्र चक्रवर्ती भरत एवं युवराज बाहुबलि जैसे विद्वान् एवं बलवान् व्यक्तियों के बीच राज्यलोभ एवं मान-रक्षा की वजह से जो जनहिंसा-विरहित संघर्ष हुआ वही उनकी आंखों मे पहला 'महाभारत' है जिसकी हिंसायुक्त पुनरावृत्ति द्वापर युग के कौरव-पांडव संघर्ष में याने सुविदित्त महाभारत[1] में पाई जाती है। परम्परा के अनुसार तेईसवें तीर्थङ्कर पार्श्व वर्धमान महावीर के २५० वर्ष पूर्व पैदा हुए थे। इन्होंने आत्मसंयम तथा तप पर बल देकर निग्गंथ परिव्राजकों के संघ का निर्माण किया। आत्मसंयम कर्म-निर्माण का अवसर प्रदान नहीं करता और तप उनके कथनानुसार कर्म का नाश करने में सक्षम होता है। भगवान् पार्श्व नाथ को 'चाउज्जाम धम्म' के निर्माण का श्रेय प्राप्त है, जो सत्य, अहिंसा, अस्तेय एवं ब्रह्मचर्य इन्हीं चार नियमों की स्थापना करते हैं। जैन परिभाषा के अनुसार ये नियम हैं—(१) **सव्वाओ मुसावायाओ वेरमणम्** (२) **सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमणम्** (३) **सव्वाओ अदिन्नादानाओं वेरमणम्, तथा** (४) **सव्वाओ बहिद्धादाणाओ वेरमणम्**। संयम तथा साधुत्व का अनुपम आदर्श प्रतिस्थापित करने वाले भगवान् महावीर ने (सिद्धार्थ-पुत्र वर्धमान ने) इसमें '**सव्वाओ परिग्गहाओ वेरमणम्**' को याने अपरिग्रह के तत्त्व को जोड़कर पांच महाव्रतों का निर्माण किया। सभी इन्द्रियों पर पूर्ण विजय पाने के कारण महावीर को 'जित' याने विजेता एवं उनके मतानुयायियों को 'जैन' कहा जाने लगा।

भगवान् महावीर ने सम्पूर्ण वैभव तथा ऐहिक सुख को तिलांजलि देकर दिगम्बर रूप में बारह वर्षों तक लगातार भारत का भ्रमण किया। आत्मक्लेश, अनशन, अध्ययन तथा चिंतन से मानव कर्म से मुक्त हो सकता है—इसे प्रतिपादित किया। कैवल्य की प्राप्ति के लिए उनके सिद्धान्त के अनुसार न वेदों के प्रामाण्य की स्वीकृति आवश्यक है, न यज्ञों का आडम्बर रचाना जरूरी है। कर्मकाण्ड के आडम्बर से बहुजन समाज ऊब उठा था, उसे पांचों महाव्रतों पर जोर देने वाला महावीर-प्रणीत धर्म रोचक प्रतीत हुआ। सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह -इन पांचों को विशुद्ध रूप में अपनाना केवल विरागी मुनियों के लिए ही सम्भव है—इसे भली-

१. इसके स्पष्टीकरण के लिए देखें—मराठी में ज. ने. क्षीरसागर प्रणीत 'आर्या-महापुराण धर्मयुद्ध' और उस पर प्रस्तुत लेखक की टिप्पणियां। प्रकाशन—१९८१ मार्च-अप्रैल।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भांति समझकर साधारण व्यक्तियों के लिए पांच अणुव्रतों का 'श्रावक' धर्म बतला कर जैन धर्म को जनसुलभ बनाने में सराहनीय दूरदर्शिता दिखाई गई। अणुव्रतों में भी संयम एवं तपस्या के मूल स्रोत को कायम रखा गया है, इसे भुलाया नहीं जा सकता। उदाहरण के तौर पर 'सव्वाओ वहिद्धाणाओ वेरमणम्' के स्थान पर परदारागमन के निषेध का नियम अणुव्रती के लिए विहित है। अणुव्रती धन का सीमित मात्रा में संचय कर सकता है; उस पर अंकुश रखना आवश्यक माना गया। मतलब, अणुव्रतों का पालन परिहित में बाधा रूप न रहते हुए स्वहित की साधना की सहूलियत देना है। जैन धर्म के प्रति आकर्षण के निर्माण में इसका बहुत बड़ा हाथ रहा है। जाति-भेद के सिद्धान्त का प्रबल विरोध करके जैनों ने धर्म के प्रसार एवं प्रचार के लिए लोकभाषा प्राकृत को माध्यम के रूप में अपनाया, और नीति-विषयक शिथिलता पर रोक लगाकर कर्म-सिद्धान्त को व्यापक रूप प्रदान करके समाज को धर्माभिमुख बनाया। यही जैन धर्म की महत्त्वपूर्ण देन है।

जैन धर्म के प्रमुख तत्त्व हैं—सम्यक् दर्शन, सम्यग् ज्ञान तथा सम्यक् चारित्र जो 'रत्नत्रय' के नाम से प्रसिद्ध हैं। **'सम्यग्-दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः'** यही उनका सिद्धान्त है। सम्यक् दर्शन निर्दोष एवं सर्वज्ञ तीर्थङ्करों द्वारा वर्णित तत्त्वों की यथार्थता में अटूट विश्वास का दूसरा नाम है। सम्यक् ज्ञान का मतलब है तीर्थङ्करों द्वारा प्रतिपादित सात तत्त्वों की, जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा तथा मोक्ष की सम्पूर्ण जानकारी पाना। सम्यक् चारित्र—जैसा कि स्पष्ट है उक्त दर्शन एवं ज्ञान के अनुसार आचरण करने से सम्बन्ध रखता है। उपर्युक्त पांच अणुव्रतों के पालन से दोषयुक्त आरम्भों को छोड़कर मोक्ष-प्राप्ति के लिए अनुकूल भावभूमि पैदा होती है और साधुओं के लिए जैन धर्म में विहित पांचों महाव्रतों का पालन करने से मोक्ष या कैवल्य की प्राप्ति होती है।

भगवान् महावीर के उपदेश को उनके सुशिष्यों ने मौखिक परम्परा के बल पर सुरक्षित रखा। इसी उपदेश के संग्रह १४ पूर्वों के नाम से पहचाने जाते हैं। भद्रबाहु भगवान् महावीर के सुशिष्यों की अन्तिम कड़ी हैं। मौर्यकाल में उत्पन्न द्वादशवार्षिक भीषण अकाल के कारण भद्रबाहु अपने शिष्यों के साथ स्थानान्तरण करके दक्षिण में मैसूर तक चले जाने पर बाध्य हुए। इसी से आगे चलकर आचारों की भिन्नता के बल पर दिगम्बर तथा श्वेतांबर पंथों का जन्म हुआ। भद्रबाहु के निर्वाण के उपरान्त दिगम्बर पंथों की मूल परम्परा लुप्त हुई। पाटलिपुत्र में आचार्य स्थूलभद्र द्वारा आयोजित धर्म-परिषद् में वृद्धों के स्मरण के आधार पर १२ अङ्गों का संकलन किया गया सही, किन्तु उसे सिर्फ श्वेतांबरों की मान्यता प्राप्त हुई। धीरे-धीरे उक्त मौखिक परम्परा भी लुप्तप्राय होने लगी। इसीलिए वलभी में ईसा के उपरान्त ५१२ में देवर्धिगणि की अध्यक्षता में आयोजित धर्मसभा में जो जैन आगम स्थापित किए गए उनकी संख्या ४५ मानी गई। देवर्धिगणि ने अपने नन्दिसूत्र में धर्मग्रन्थों के वर्गीकरण के अवसर पर ७२ धर्म ग्रन्थों का उल्लेख किया जिनमें १२ अङ्गप्रविष्ट, ६ आवश्यक, ३१ कालिक तथा २९ उत्कालिक ग्रन्थ समाविष्ट हैं। पश्चिमीय पण्डित डॉ० बुहलर के वर्गीकरण के अनुसार ११ अङ्गों, १२ उपाङ्गों, ६ छेद सूत्रों एवं ४ मूल सूत्रों के साथ देवर्धिगणिप्रणीत नन्दिसूत्र तथा अणुयोगद्वार का भी अन्तर्भाव होता है। लेकिन इनको प्रमाण मानना श्वेतांबरों के लिए ही मंजूर है। आगे चलकर श्वेतांबरों में भी दो भेद हुए—मूर्तिपूजक एवं स्थानकवासी। जैन धर्मानुयायी साधु, साध्वी, श्रावक एवं श्राविका विभाजित हैं। श्वेतांबरों के मतानुसार इनमें साधु एवं साध्वी ही मोक्ष के अधिकारी हैं।

दिगम्बर पंथ के अनुयायियों ने बारह अङ्गों को तो प्रमाण मान लिया। बारहवां अङ्ग है दिट्ठिवाय (दृष्टिवाद)। इसमें १४ पूर्वों में से उन अंशों का समावेश है जो पाटलिपुत्र की धर्मसभा के समय तक अवशिष्ट थे। इस दृष्टिवाद के पहले खण्ड में 'चंद पज्जत्ति', 'सूरियपज्जत्ति' तथा 'जम्बुद्दीव-पज्जत्ति' का अन्तर्भाव है। अङ्गों के अतिरिक्त ७४ अङ्गबाह्य ग्रन्थों को भी दिगम्बर पंथियों ने धर्मग्रन्थों में समाविष्ट किया। दिगम्बर पंथ के अनुयायियों में भी चतुर्थ, पंचम, तेरापंथी आदि कई भेद हैं। जैन धर्म के अनुयायियों के जो चार वर्ग ऊपर बनवाए गए उनमें साधु 'केवल' ज्ञान की प्राप्ति के उपरान्त भोजन नहीं करते। यदि साध्वी मोक्ष प्राप्ति की इच्छुक हो तो सदाचार एवं तप के बल पर उसे पुरुष जन्म प्राप्त करके साधु बनना नितान्त आवश्यक है। श्रावक एवं श्राविका भी बिना साधुत्व को पाए मोक्ष के अधिकारी नहीं होते। इस विषय में श्वेतांबर पंथ के अनुयायियों का दृष्टिकोण अधिक उदार प्रतीत होता है।

जैन ग्रन्थों में सम्यक् ज्ञान के पांच भेद हैं—मति, श्रुत, अवधि, मनः-पर्यय तथा केवल। मति ज्ञान इन्द्रिय-संयोग से उत्पन्न होने वाला वह ज्ञान है जो मति ज्ञानावरणीय कर्म के क्षय के उपरान्त प्राप्त होता है। मति ज्ञान के बाद धर्म ग्रन्थों के पठन से उत्पन्न ज्ञान को 'श्रुत' की संज्ञा प्राप्त है। सम्यक् दर्शन आदि गुणों के विकास के उपरान्त द्रव्य, क्षेत्र, काल तथा भाव इन चारों प्रकारों से पैदा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होने वाले ज्ञान को अवधि ज्ञान कहा जाता है, इसकी अपनी विशिष्ट सीमा होती है। ईर्ष्यादि अन्तरायों के दूर होने के बाद व्यक्ति दूसरों के मन के व्यापार को भांपने लगता है; इसी ज्ञान का नाम है मनःपर्यय। इसके बाद विशिष्ट तपस्या के बल पर व्यक्ति सर्व वस्तुओं के ज्ञान से संपन्न होता है जो सम्पूर्ण एवं निराबाध होता है। इसी को 'केवल ज्ञान' कहते हैं जिसके अधिकारी हैं सिर्फ अर्हत्, सिद्ध एवं तीर्थङ्कर।

ज्ञान एवं चारित्र की उपासना के बल पर जैन धर्म के अनुयायियों ने साहित्य के क्षेत्र में भी अविस्मरणीय कार्य किया है। दिगम्बर पंथ के विद्वान् आचार्यों ने परवर्ती काल में लुप्त आगमों के स्थान पर नवीन धर्म-ग्रन्थों का प्रणयन करके उन्हें चारों वेदों का प्रामाण्य प्रदान किया। ये वेद हैं प्रथमानुयोग, करणानुयोग, द्रव्यानुयोग एवं चरणानुयोग। धार्मिक विधि-विधानों की चर्चा करने वाले चरणानुयोग में वट्टकेरकृत 'मूलाचार', 'त्रिवर्णाचार' अथवा समंतभद्रप्रणीत 'रत्नकरण्डक श्रावकाचार' जैसे ग्रन्थों का अन्तर्भाव होता है। द्रव्यानुयोग अधिकतर दर्शन से सम्बद्ध है; इसमें कुन्दकुन्दाचार्य के विख्यात ग्रन्थों के साथ-साथ उमास्वामि प्रणीत 'तत्त्वार्थाधिगमसूत्र' तथा समंतभद्र विरचित 'आप्तमीमांसा' जैसे ग्रन्थों का समावेश करना समीचीन है। करणानुयोग में 'सूर्यप्रज्ञप्ति', 'चन्द्रप्रज्ञप्ति' अथवा 'जयधवला' जैसी रचनाओं का समावेश है जिनमें सृष्टि के रहस्य को सुलझाने का महान् प्रयत्न किया गया है। प्रथमानुयोग में वे पुराण ग्रन्थ समाविष्ट हैं जिनमें काव्य एवं इतिहास का मनोज समन्वय किया गया है।

वैदिक संस्कृति में पुराण को इतिहास के साथ जोड़ा गया है; 'इतिहासः पुराणानि च' का उल्लेख कई स्थानों पर पाया जाता है। इतिहास में अगर 'इति ह आस' याने घटित घटनाओं के कथन पर जोर दिया जाता है तो पुराणों में प्राचीन ऋषियों, राजाओं एवं महापुरुषों के चरित्र-कथन को महत्त्व प्राप्त होता है। 'पुराणं पञ्चलक्षणम्' भी इसी के प्राधान्य की ओर संकेत करता है। क्या वंश, क्या मन्वन्तर, क्या वंशानुचरित सभी में महापुरुषों की गाथाएं सामने आती हैं। महापुरुषों के जीवन से सम्बद्ध होने के कारण इनमें जनमानस को प्रेरणा देने की अनूठी शक्ति होती है और इसीलिए जनजीवन पर पुराणों का महत्त्व अंकित है। जैन धर्म के पुराणों में उपर्युक्त पांचों लक्षण तो हैं ही; साथ-साथ इनमें इतिवृत्त की या इतिहास की सुरक्षा अधिक अनुपात में की गई है।

उपलब्ध जैन पुराणों की रचना संस्कृत साहित्य के विख्यात भाष्यकारों के काल में आरम्भ हुई; अतएव इनकी भाषा अधिकतर संस्कृत ही है। जैन संस्कृत साहित्य के पुरस्कर्ताओं में तत्त्वार्थसूत्र के रचयिता आचार्य गृद्धपिच्छ का उल्लेख सर्वप्रथम करना चाहिए। इन सूत्रों पर संस्कृत में भाष्य लिखने वाले पूज्यपाद अकलंक तथा विद्यानन्द जैसे महर्षियों का कार्य सराहनीय है। श्वेतांबराचार्य पादलिप्तसूरि प्रणीत 'निर्वाण कलिका' परवर्ती काल में अवतीर्ण हुई। ईसा की तीसरी शताब्दी में आचार्य मानदेव रचित 'शान्तिस्ताव' श्वेतांबर जैनों द्वारा समादृत ग्रन्थ है। परवर्ती काल में श्वेतांबर आचार्य सिद्धसेन दिवाकर तथा दिगम्बर आचार्य समन्तभद्र को आदरपूर्वक वन्दना करना समीचीन होगा। आचार्य सिद्धसेन प्रणीत 'सन्मतितर्क' एवं समन्तभद्र विरचित 'आप्तमीमांसा' जैन दर्शन को सुव्यवस्थित रूप प्रदान करने वाले महान् ग्रन्थ हैं। ईसा की छठवीं शताब्दी में दिगम्बर आचार्य पूज्यपाद (अथवा देवनन्दी) की कृतियों से जैन संस्कृत साहित्य गौरवान्वित हुआ। सातवीं शताब्दी के आचार्य मानतुङ्ग ने 'आदिनाथ-स्तोत्र' लिखकर संस्कृत स्तोत्र-साहित्य को समलंकृत किया। इसी का प्रचलित नाम है 'भक्तामरस्तोत्र' जिसकी लोकप्रियता उस पर लिखी गई अनगिनत टीकाओं से स्पष्ट है। ईसा की आठवीं शताब्दी पर दिगम्बर आचार्य अकलंक तथा श्वेतांबर आचार्य हरिभद्रसूरि के कर्तृत्व की छाप अमिट रूप से अङ्कित है। इनकी कृतियों के कारण जैन संस्कृत साहित्य को वैचारिक विश्व में अनुपम प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। दिगम्बर आचार्य रविषेण का 'पद्मपुराण' इसी समय प्रकाशित हुआ। यह ग्रन्थ जैन पुराणों की उज्ज्वल परम्परा का प्रवर्तक सिद्ध हुआ। दिगम्बराचार्य जिनसेन विरचित महापुराण इसी उज्ज्वल परम्परा का जगमगाता रत्न है। दार्शनिक एवं वैचारिक साहित्य की उपर्युक्त पार्श्वभूमि के कारण ईसा की नववीं शताब्दी में विरचित 'महापुराण' ऋषिप्रणीत होने के कारण आर्ष तो है ही; साथ-साथ 'सूनृतशासनात् सूक्त' एवं 'धर्मानुशासनात् धर्मशास्त्रम्' का रूप धारण कर चुका है। जैन दर्शन का उत्तम काव्य के साथ अनूठा मेल उपस्थित करने वाला महापुराण दो भागों में उपलब्ध है; पहला पूर्वपुराण (आदिपुराण) तथा दूसरा 'उत्तरपुराण'। पूर्वपुराण के १०००० श्लोक आचार्य जिनसेन द्वारा रचित हैं। उनके पश्चात् उनके सुशिष्य आचार्य गुणभद्र ने २००० श्लोक लिखकर पूर्वपुराण पूरा किया और ८००० श्लोकों के उत्तर पुराण की रचना की। इस महापुराण में २४ तीर्थङ्कर, १२ चक्रवर्ती, ९ बलभद्र, ९ नारायण तथा ९ प्रतिनारायण याने कुल मिलाकर ६३ महापुरुषों के चरित्र उनके पूर्व जन्मों के साथ-साथ वर्णित हैं। ये महापुरुष जैनों के लिए अनुकरणीय आदर्श के रूप में प्रतिष्ठित हैं। इनकी महिमा क्या दिगम्बर, क्या श्वेताम्बर जैन दोनों द्वारा स्वीकृत है। श्वेताम्बर जैन इसे 'पुराण' की संज्ञा देकर नहीं अघाते; वे इस ग्रन्थ को 'त्रिशष्टिशलाकापुरुषचरित' कहकर इसका गौरव करते हैं। जिनसेन-प्रणीत 'पार्श्वाभ्युदय' काव्य भी संस्कृत साहित्य का चेतोहर अलङ्कार है। जैनों की अधिकांश पौराणिक कथाएं वैदिक पुराणों की कथाओं से ली गई हैं सही; किन्तु जैनों का कथाकोश

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महत्त्वपूर्ण कथाओं का संग्रह है। जैन कथा साहित्य में गुजरात के महान् पण्डित कवि एवं साधु हेमचन्द्र (जन्म ई० सं० १०८६) द्वारा प्रणीत 'त्रिशष्टिशलाकापुरुषचरित' का स्थान उच्च कोटि का है।

तत्त्वदर्शन तथा तर्कशास्त्र में जैन धर्म ने जो कार्य किया उसका मूल्य शाश्वत माना जाएगा। 'षड्दर्शनसमुच्चय' जैसे अनेक असाधारण ग्रन्थों के प्रणेता हरिभद्रसूरि से लेकर वर्त्तमान समय के तेरापंथी आचार्य तुलसी तथा उनके सुशिष्य आचार्य नथमल जैन तक पण्डितों की परम्परा अविछिन्न रूप में चली आ रही है। क्या तर्कशास्त्र, क्या व्याकरण, क्या कोश, क्या काव्य सभी क्षेत्रों को समृद्ध करने का श्रेय इन पण्डितों को प्राप्त है। जैनों की दार्शनिक विचार-पद्धति में 'अनेकान्तवाद' वह मौलिक सिद्धान्त है जिसमें पश्चिमीय दार्शनिक हेगेल और कार्ल मार्क्स द्वारा पुरस्कृत एवं प्रतिपादित विरोध-विकास पद्धति के बीज पाए जाते हैं। स्यादस्ति, स्यान्नास्ति, स्यादवक्तव्यः, स्यादस्ति च नास्ति च, स्यादस्ति अवक्तव्यश्च, स्यान्नास्ति अवक्तव्यश्च—सप्तभङ्गीनय के इन सातों प्रकारों द्वारा किया गया वर्णन ही वस्तु के संपूर्ण ज्ञान का परिचायक है। यह सिद्धान्त वास्तव में दर्शन के क्षेत्र में 'परमतसहिष्णुता' का आदर्श उपस्थित करता है और उपनिषदों के 'नेति नेति' की तरह मानव की अपूर्णता की ओर संकेत करके जैन दर्शन की अनूठी दृष्टि का प्रमाण प्रस्तुत करता है। कोई अचरज नहीं कि सभी दर्शनों के प्रकाण्ड पण्डित हरिभद्रसूरि 'लोकतत्त्वनिर्णय' में कहते हैं—

पक्षपातो न मे वीरे न द्वेषः कपिलादिषु।
युक्तिमद् वचनं यस्य तस्य कार्यः परिग्रहः॥

जिस जैन धर्म में दीक्षित महापण्डित एवं कवि हेमचन्द्र सोमनाथ के मन्दिर में प्रणाम करते हुए कह उठते हैं "मैं उसकी वन्दना करता हूं जिसके मन के राग, द्वेष आदि संसार के बीज के अंकुर की वृद्धि में सहायक विकारों का क्षय या विध्वंस हुआ है; चाहे वह ब्रह्मा हो, विष्णु हो, हर हो अथवा जिन हो"[1] उस धर्म की एवं साहित्य की उदार देन के विषय में कोई सन्देह नहीं हो सकता।

श्री हॉपकिन्स का आचार्य श्री विजय सूरि को लिखा पत्र

"मैंने अब महसूस किया है कि जैनों का आचार धर्म स्तुति योग्य है। मुझे अब खेद होता है कि पहले मैंने इस धर्म के दोष दिखाये थे और कहा था कि ईश्वर को नकारना, आदमी की पूजा करना तथा कीड़ों को पालना ही इस धर्म की प्रमुख बातें हैं। तब मैंने नहीं सोचा था कि लोगों के चरित्र एवं सदाचार पर इस धर्म का कितना बड़ा प्रभाव है। अक्सर यह होता है कि किसी धर्म की पुस्तकें पढ़ने से हमें उसके बारे में वस्तुनिष्ठ ही जानकारी मिलती है, परन्तु नजदीक से अध्ययन करने पर उसके उपयोगी पक्ष की भी हमें जानकारी मिलती है और उसके बारे में अधिक अच्छी राय बनती है।"

एस० गोपालन, **जैनधर्म की रूपरेखा** (अनुवादक-गुणाकर मुले), दिल्ली १९७३, पृ० ११ से सभार

२. देखें—भवबीजाङ्कुरजनना रागाद्याः क्षयमुपागता यस्य।
ब्रह्मा वा विष्णुर्वा हरो वा जिनो वा नमस्तस्मै॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org